मातृ दर्शन के निमित्त देहरादून में

सन् १९३२ के जन्मोत्सव के बाद स्वर्गीय ज्योतिष बाबू और भोलानाथ को लेकर श्री श्री माँ अनिर्दिष्ट काल के लिए अचानक ढाका शहर से चल दी । लौकिक भाव में पहले से ही कार्यक्रम निश्चित करके जाना, माँ का स्वभाव नहीं है । संकल्प–विकल्प का द्वन्द्व उनमें नहीं है । वारिधि वीचिविक्षेप की भाँति माँ के चिदाकाश में कभी–कभी संकल्प अपने–आप जाग उठता है और ज्योंही जाग उठा त्योंही उसे कार्यरूप में परिणत कर देती हैं । इसीलिए श्री श्री माँ का कार्यकलाप एक ओर दुर्बोध्य है तो दूसरी ओर दुर्निवार ।

उत्सव के दूसरे दिन सभी लोग थककर आश्रम में विश्राम कर रहे थे । उस समय रात्रि के १० बजे थे । अचानक इसी समय माँ कह उठीं कि वे अभी ढाका नगरी से चल देना चाहती हैं । तुरंत–ज्योतिष बाबू को उनके घर से आश्रम में बुलाया गया और रात १२ बजे वाली गाड़ी से माँ रवाना हो गयीं । ज्योतिष बाबू को इतना भी मौका नहीं दिया कि वे घर जाकर अपनी पत्नी, बच्चों से मुलाकात कर लें या अपने लिए कपड़ा वगैरह ले लें । ये लोग गोरखपुर, लखनऊ आदि स्थानों में घूमते हुए देहरादून पहुँचे । बाद में देहरादून से ४–५ मील दूर रायपुर नामक एक गांव में स्थित शिव मन्दिर में जाकर ठहरे । इसी स्थान पर बाबा भोलानाथ कठोर तपस्या करने लगे । वे मौन होकर दिन–रात शिव मन्दिर में साधन–भजन करने लगे । ज्योतिष बाबू कुछ दिनों तक साथ रहने के बाद पुनः ढाका में अपने कार्यालय में आ गये । लेकिन अधिक दिनों तक नौकरी नहीं कर सके। अवकाश ग्रहण करने के बहुत पहले ही अवकाश ले वे श्री श्री माँ की सेवा में चले आये । बाबा भोलानाथ कुछ दिनों तक रायपुर

में रहने के बाद उत्तरकाशी चले गये और उग्र तपस्या में निमग्न हो गये। इधर माँ ज्योतिष बाबू को लेकर मसूरी, देहरादून, हरिद्वार आदि स्थानों में घूमने लगीं ।

लगभग दो वर्ष तक उत्तरकाशी में साधन–भजन करने के बाद बाबा भोलानाथ ने वहां एक मन्दिर बनवाया और विग्रह की स्थापना की । उक्त मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय ढाका कलकत्ता से अनेक भक्त वहां गये थे । मन्दिर की स्थापना के बाद बाबा भोलानाथ उत्तरकाशी से चलकर इधर–उधर घूमते हुए' ज्वालामुखी' नामक स्थान पर जाकर तपस्या करने लगे । इन्हीं दिनों माँ ज्योतिष बाबू को साथ लेकर बैजनाथ आदि स्थानों में भ्रमण करती हुई देहरादून में आकर रहने लगीं ।

श्री श्री माँ को ढाका से गये तीन साल व्यतीत हो गये थे । इस लम्बे अर्से में माँ को न देख पाने के कारण मैं जरा चंचल हो गया । बंगला १९३५ की पूजा की छुट्टियों में माँ का दर्शन करने के लिए देहरादून रवाना हो गया ।

२५ आश्विन को देहरादून एक्सप्रेस से पत्नी एवं छोटी लड़की सती को लेकर देहरादून रवाना हुआ । ज्योतिष बाबू ने एक पत्र में लिखा था कि अगर मैं हरिद्वार होते हुए देहरादून जाऊँ तो नानकीबाई की धर्मशाला में श्री श्री माँ के बारे में जानकारी प्राप्त कर लूँ । श्री श्री माँ हरिद्वार में ही हो सकती हैं, यह अनुमान लगाकर देहरादून का टिकट न लेकर मैंने हरिद्वार तक का ले लिया । २७ आश्विन को हरिद्वार पहुँचा, पर वहां भी माँ को न पाकर उसी दिन ९ बजे देहरादून रवाना हो गया । दोपहर को १२ बजे देहरादून पहुँचने पर एक नयी मुसीबत का सामना करना पड़ा । ज्योतिष बाबू ने हरिद्वार का पता तो दे दिया था, पर देहरादून में माँ कहा हैं, यह नहीं लिखा था । फलतः एक तांगा लेकर माँ की तलाश में चल पड़ा । काफी चक्कर काटने के बाद राजपुर रोड स्थित ५९ नम्बर के मकान में

माँ को पाया । मकान काफी बड़ा था । इसके एक हिस्से में कुछ गृहस्थ लोग रहते हैं और कुछ दूरी पर बना हिस्सा संन्यासियों के लिए आश्रम का रूप दिया गया है । इसका नाम कृष्णाश्रम है । माँ कृष्णाश्रम में ठहरी हुई थीं ।

मकान में प्रवेश करते ही देखा कि बरामदे के पश्चिमी भाग में माँ आपादमस्तक चादर ओढ़े सो रही हैं । मन-ही-मन माँ को प्रणाम करने के बाद अपने परिवार के ठहरने लायक स्थान की तलाश में निकल पड़ा । ज्योतिष बाबू ने हम लोगों के ठहरने के लिए जिस स्थान को ठीक करके रखा था, वहाँ कई प्रकारकी असुविधाएँ थीं । ज्योतिष बाबू[1], हमारे पथ प्रदर्शक थे । उनके सुझाव के अनुसार ताजमहल होटल में जाकर एक कमरा किराये पर लिया । दैनिक किराया डेढ़ रुपये था । वहाँ स्नानादि करने के पश्चात् मैं पुनः माँ के पास आया ।

उस वक्त ३॥ या ४ बजे थे । अब जो गया तो देखा-माँ बरामदे के पूर्वी भाग में एक आरामकुर्सी पर बैठी हुई हैं । प्रणाम करते ही माँ हँस पड़ीं । बोलीं-मैं जब सोकर उठी तब बोली कि पिताजी (अर्थात् मैं) मुझे छोड़कर चले गये ।

मैं-माँ, डेरा पहले से निश्चित नहीं था । रहने के लिए जगह का प्रबन्ध करने गया था, इसलिए अधिक देर रुक नहीं सका ।

मां-यह मैं सुन चुकी हूँ ।

सती ने ज्योंही प्रणाम किया त्योंही माँ बोल उठीं-मेरे केश आ गये हैं । दो दिन पहले मैं सोच रही थी कि मैं तो यहाँ हूँ और मेरे केश अन्यत्र पड़े हैं ।

मैं-इन बातों का क्या अर्थ हैं, माँ ?

---

१. श्रीयुक्त नरसिंह चट्टोपाध्याय एम.ए. । इन दिनों मथुरा कालेज में पढ़ाते हैं । माँ ने इनका नाम ज्योति रखा हैं ।

माँ–इसके (अर्थात् सती) केश तो मेरे केश हैं, क्या इसे आज तुमने पहली बार सुना ।

मैं–नहीं । इसके पूर्व भी सुन चुका हूँ, पर इस बात का अर्थ क्या है ?

माँ ने मेरे प्रश्न का जवाब नहीं दिया बल्कि खिलखिलाकर हँस पड़ी । बोलीं–'पिताजी को सन्देह हो गया है ।' बाद में ढाका में कौन कैसे है, इस बारे में पूछने लगी ।

मैं–क्या तुम यह सब नहीं जानती जो मुझसे पूछ रही हो ?

माँ मधुर मुस्कान के साथ हँसती हुई बोली–'बातें करनी चाहिए न ।'

मैं–तब क्या बातें करने के लिए यह सब करती रहती हो ?

माँ पुनः हँस पड़ी । स्वामी शंकरानन्द ने कहा–''सिर्फ बातें करने के लिए हो क्यों ? आप जब ढाका वापस जायेंगे तब सभी आपसे यह सवाल करेंगे कि माँ किस–किसके बारे में पूछती रहीं । जब उन्हें यह ज्ञात होगी कि उनके बारे में माँ पूछती रहीं तब वे लोग मन–ही–मन सन्तुष्ट होंगे ।''

मां–क्यों पिताजी, अब जवाब मिला न ?

मैं–हाँ, पर तुम भी इस बात को मानने के लिए बाध्य हो गयी हो कि हम लोगों के बारे में बिना किसी पूछताछ के सब जानती हो।

नाम जपना तथा नाम होना

इसके बाद मेरे एक गुरु भाई की बात चल पड़ी । मैंने कहा–''माँ तुम यह कहती हो कि नाम करते करते (जपना) सब प्राप्त हो जाता हैं । मेरे एक गुरु भाई हैं, जो दिन–रात के २४ घण्टे में २२ घंटे नाम करते रहते हैं । वे प्रायः मुझसे कहते हैं–'देखो, मैं

पुस्तक पढ़ता रहता हूँ या तुम लोगों से बातें करता हूँ तब भी भीतर–ही–भीतर मेरा नाम जपना जारी रहता हैं । वह कभी बन्द नहीं होता।' आजकल वे नास्तिक हैं ।''

माँ–नास्तिक हैं ?

मैं–ठीक नास्तिक नहीं हैं । लेकिन उनका अब यह कहना हैं कि भगवान् नामक कोई अगर है तो हो सकता है, पर उसके बारे में ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य के लिये असम्भव है । भले ही यह तथ्य नास्तिकता न हो, पर नास्तिकता के पक्ष में है । इसके अलावा आजकल वे गुरु के प्रति उतने भक्तिमान नहीं हैं । देवी–देवी के अस्तित्व को नहीं मानते । कहते हैं–'शास्त्र में बेकार की बातें हैं ।' वे आजकल एक पुस्तक लिख रहे हैं । उस पुस्तक में वे यही बतायेंगे कि अब तक भगवान् के बारे में, शास्त्रों में जो कुछ कहा गया है, सब झूठ है । वे यह भी प्रमाणित कर देंगे कि भगवान् को जानने का कोई उपाय नहीं है । नाम करने पर अगर व्यक्ति की यह दशा होती हैं तो नाम पर लोगों की भक्ति या विश्वास कैसे बना रह सकता हैं ?

माँ–तुमने पिताजी के बारे में जो कुछ बताया, उससे ऐसा लगता है कि पिताजी की स्थिति ऊँची है । यह भी साधन की एक अवस्था है जब सभी चीजों के प्रति अविश्वास उत्पन्न होता है । इसके अलावा पिताजी ने कुछ गलत नहीं कहा है । पिताजी अगर मुझे यह सब बातें कहते तो मैं उनसे कहती– 'पिताजी, तुमने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है ।' (अपने को दिखाती हुई) इस शरीर पर न जाने कितनी अवस्थाएं गुजर गयी हैं, इसलिए मैं समझ पा रही हूँ कि पिताजी किस अवस्था की बातें कहते हैं । एक अर्थ से देव, देवी, शास्त्र सब मिथ्या हैं । जिसे प्रकट नहीं किया जा सकता, उसे भाषा में आबद्ध करने पर सब मिथ्या हो जायेगा । इस अर्थ से शास्त्र भी मिथ्या है और देवता भी मिथ्या हैं । पिताजी जो पुस्तक लिख रहें हैं, पिताजी

पुस्तक पढ़ता रहता हूँ या तुम लोगों से बातें करता हूँ तब भी भीतर–ही–भीतर मेरा नाम जपना जारी रहता हैं । वह कभी बन्द नहीं होता।' आजकल वे नास्तिक हैं।''

माँ–नास्तिक हैं ?

मैं–ठीक नास्तिक नहीं हैं । लेकिन उनका अब यह कहना हैं कि भगवान् नामक कोई अगर है तो हो सकता है, पर उसके बारे में ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य के लिये असम्भव है । भले ही यह तथ्य नास्तिकता न हो, पर नास्तिकता के पक्ष में है । इसके अलावा आजकल वे गुरु के प्रति उतने भक्तिमान नहीं हैं । देवी–देवी के अस्तित्व को नहीं मानते । कहते हैं–'शास्त्र में बेकार की बातें हैं ।' वे आजकल एक पुस्तक लिख रहे हैं । उस पुस्तक में वे यही बतायेंगे कि अब तक भगवान् के बारे में, शास्त्रों में जो कुछ कहा गया है, सब झूठ है । वे यह भी प्रमाणित कर देंगे कि भगवान् को जानने का कोई उपाय नहीं है । नाम करने पर अगर व्यक्ति की यह दशा होती हैं तो नाम पर लोगों की भक्ति या विश्वास कैसे बना रह सकता हैं ?

माँ–तुमने पिताजी के बारे में जो कुछ बताया, उससे ऐसा लगता है कि पिताजी की स्थिति ऊँची है । यह भी साधन की एक अवस्था है जब सभी चीजों के प्रति अविश्वास उत्पन्न होता है । इसके अलावा पिताजी ने कुछ गलत नहीं कहा है । पिताजी अगर मुझे यह सब बातें कहते तो मैं उनसे कहती– 'पिताजी, तुमने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है ।' (अपने को दिखाती हुई) इस शरीर पर न जाने कितनी अवस्थाएं गुजर गयी हैं, इसलिए मैं समझ पा रही हूँ कि पिताजी किस अवस्था की बातें कहते हैं । एक अर्थ से देव, देवी, शास्त्र सब मिथ्या हैं । जिसे प्रकट नहीं किया जा सकता, उसे भाषा में आबद्ध करने पर सब मिथ्या हो जायेगा । इस अर्थ से शास्त्र भी मिथ्या है और देवता भी मिथ्या हैं । पिताजी जो पुस्तक लिख रहें हैं, पिताजी

की अवस्था तक जो लोग पहुँचेंगे, उनके लिये उपयोगी होगी । हाँ, तुम पिताजी से यह जरूर पूछ सकते हो कि पिताजी शास्त्र को मिथ्या कहकर उस मिथ्या की सृष्टि क्यों कर रहे हो ? पिताजी जो कुछ लिख रहे हैं, वह भी तो शास्त्र के अलावा अन्य कुछ नहीं है । और तुमने जो नाम करने की बातें कहीं, इसे याद रखना कि नाम करना बिलकुल बेकार नहीं है । पिताजी नाम करते रहे, इसलिये इस अवस्था तक पहुँचे हैं । इसके अलावा नाम करना और नाम होना अलग-अलग बातें हैं । पिताजी ने नाम किया है, अपने आप नाम नहीं हुआ है ।

मैं–नाम करना तो समझता हूँ । नाम होना कैसा होता है ? क्या होने पर समझा जाय कि नाम हो रहा है ?

माँ– जब यह देखोगे कि तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध नाम अपने आप होता जा रहा है, जब देखोगे कि किसी काम के लिए अन्यत्र जाना है; पर नाम तुम्हें जाने नहीं दे रहा है, जब देखोगे कि नाम तुम्हारी इच्छा, कर्म शक्ति पर अधिकारी जमाये बैठा है तब समझ लेना नाम हो रहा है । इसी प्रकार ध्यान करना एक बात है और ध्यान का होना अलग बात है । लोग ध्यान करने का प्रयत्न मात्र करते हैं, लेकिन जब सचमुच ध्यान होता है तब समझ में आता है कि इन दोनों में कितना अन्तर है ।

मैं– मेरे गुरु भाई जब ध्यान करते थे तब उन्हें घंटा-ध्वनि और वंशी-ध्वनि सुनाई देती थी । ज्योति भी दिखाई देती थी । मैंने उससे पूछा था कि ये सब ध्वनियाँ कहां से आती हैं, क्या जानते हो ? उत्तर में उन्होंने बताया– 'मैंने केवल ध्वनि सुनी है, कहाँ से आती है, पता नहीं । इन ध्वनियों का क्या मतलब है ?'

माँ – तुम्हें बता रही हूँ जब कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है, तब नाभिमूल में जितनी ग्रन्थियां हैं, वे खुलने लगती हैं । जब ग्रन्थियां

खुलने लगती हैं, तब विभिन्न प्रकार के शब्द सुनाई देते हैं और ज्योति दिखाई देती है । एक भी ग्रन्थि भेद होने पर शब्द सुनाई देता है। इसे अनाहत ध्वनि कहते हैं । यह हमेशा होता रहता है, पर जब तक चित्त स्थिर नहीं होता तब तक यह सुनाई नहीं देता । यही संसार की विभिन्न ध्वनियों की समष्टि है । जैसे शंख, घंटा, घड़ियाल आदि की आवाजें भिन्न-भिन्न हैं, पर एक साथ इन्हें बजाने पर एक प्रकार की आवाज होती है, उसी प्रकार अनाहत ध्वनि होती है । संसार में ऐसी कोई ध्वनि नहीं है जिसके साथ इसकी तुलना की जा सके। जबकि संसार की सभी ध्वनियां इसी ध्वनि से उत्पन्न हुई हैं । इसी प्रकार अन्य एक ग्रन्थि भेद होने पर ज्योति दर्शन होता है । यह ज्योति भी अपार्थिव है । जगत् के किसी भी प्रकाश से इसकी तुलना नहीं की जा सकती । रूप के बारे में भी यही बात लागू होती है । ग्रन्थि-भेद के साथ ही साथ लोगों के संस्कार के अनुसार नाना रूप दर्शन होते हैं । फिर समस्त रूप एक रूप में लय हो जाता है । संसार की सभी चीजें एक मूल से उत्पन्न होती हैं। ग्रन्थि-भेद होने पर ही सब समझ में आ जाता है । जिनकी समस्त ग्रन्थियों का भेद हो गया है, वे ही जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं लय के कारणों को समझ पाते हैं । जिनका आंशिक भेद हुआ है, वे समझ नहीं पाते । इसलिये पिताजी कहते थे कि कहां से आवाज आ रही है, समझ नहीं पाता । केवल शब्द सुन पाता था ।

मैं- माँ, साधना में इतना आगे बढ़ जाने पर भी वे अपने गुरु को मूर्ख कहते हैं । हम यह जानते हैं कि गुरु में एकनिष्ठ भक्ति न रहने पर साधना-सिद्धि प्राप्त करना स्वप्न के बराबर है ।

मां- पिताजी की इन दिनों खण्डन की अवस्था है । उनके सामने जो कुछ आ रहा है, उसे टुकड़े-टुकड़े कर दे रहे हैं । तुम लोगों ने देखा होगा कि बगीचे में सफाई करते वक्त कुछ लोग झाड़-झांकड़

के साथ लौकी–कद्दू जैसे मूल्यवान पौधों को भी उखाड़ फेंकते हैं । आजकल पिताजी की यही स्थिति है । पिताजी विचारों के माध्यम से संस्कार–मुक्त हो रहे हैं । ऐसी हालत में देवता–गुरु कुछ भी नहीं रहेंगे, क्योंकि देवता की तरह गुरु भी एक संस्कार के अलावा और क्या है । पिताजी की अवस्था में जो लोग आये हैं, वे लोग केवल इसी प्रकार गुरु को आक्रमण करते रहेंगे । तुम लोगों का ऐसा करना अन्याय होगा ।

इन बातों के बाद अन्य बातों का दौर चल पड़ा । मैंने कहा– 'माँ, मंदिर प्रतिष्ठा के समय उत्तर काशी जाने की मेरी इच्छा थी पर तुमने जाने नहीं दिया । तरह–तरह से विघ्न डालकर मुझे ढाका में रहने को बाध्य कर दिया । उस समय मैं तुम्हें भला–बुरा कहता रहा।'

माँ– 'ठीक से गाली कहाँ दे पाते हो । देखो, कमरे में प्रवेश करने के दो रास्ते हैं । एक है–दरवाजा तोड़कर भीतर जाना और दूसरा उपाय है दरवाजे के पास अपने को लिटा देना यानी दरवाजे के पास अपने को तोड़ देना ।'

इसी प्रकार की बातें करते शाम हो गयी। माँ टहलने के लिए बाहर निकलीं। हम लोग जब सड़क पर आये, उस समय आसमान में चाँद दिखाई दे रहा था। मसूरी के पहाड़ पर झलमल करता हुआ प्रकाश बड़ा सुन्दर लग रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे गिरिराज के गले में किसी ने हीरे की माला पहना दी हो। ऊपर निर्मल आकाश, चारों ओर चांदनी। नीचे जगज्जननी मां झूमती हुई टहल रही हैं। हम लोग उनके पीछे–पीछे चल रहे हैं। इधर मैं सोच रहा था कि शयन में, जागरण में, नित्य के प्रत्येक कार्य में, अगर मां को इसी तरह आगे रखा जाय तो संसार में और किसी चीज की चाह नहीं रहेगी ।

भ्रमर की शिव पूजा

कुछ देर टहलने के बाद माँ वापस आ गयीं । ज्योंही माँ आयीं त्योंही उन्हें भू–गर्भ स्थित एक गुफा में ले जाया गया । मकान के जिस हिस्से में माँ रहती हैं, उसमें दो गुफाएँ हैं । माँ के साथ ही हम लोग भी गुफा के भीतर गये । प्रवेश करने के साथ ही देखा कि गुफा छोटी होने पर भी काफी छोटी नहीं है कम–से–कम १५–२० व्यक्ति बैठ सकते हैं । गुफा धूप के गंध से परिपूर्ण है । यहाँ भ्रमर और लक्ष्मीबाई पूजा का आयोजन कर रही हैं । एक बोतल के भीतर विल्व वृक्ष की एक शाखा रखकर बेल का पेड़ बनाया गया है । गुफा के एक ओर एक पीढ़े पर १०८ मोमबत्ती जल रही है। फूल नैवेद्य सब कुछ तैयार है । यह सब देखकर मैंने माँ से पूछा– "माँ, यह सब क्या है ?"

माँ ने कहा–"भ्रमर आज तीन साल से बराबर शिव–पूजा करती आ रही है । अब तक यह अपने मन से पूजा करती आयी है । पिछले लक्ष्मी पूर्णिमा के दिन शास्त्रीय ढंग से पहले पहल पूजा की । आज पुनः उसी ढंग से पूजा करेगी ।"

इस भ्रमर नामक लड़की को मैंने पहले पहल देखा । इसकी आकृति पर दृढ़ता मिश्रित सरलता का एक ऐसा भाव है जो अपूर्व है । लड़की मुझे प्रिय लगी । जब वह शुद्धवास में शुद्धासन पर बैठी तब मुझे ऐसा लगा जैसे स्वयं पार्वती शिवाराधना में नियुक्त हुई हैं । माँ पास ही बैठकर सब देख रही थीं । कभी–कभी कुछ बताकर विषय–बुद्धि की गंभीरता का परिचय दे रही हैं । एक ब्राह्मण पंडित पूजा कराने आये । ये ज्योति के पिता हैं । निष्ठावान ब्राह्मण लगे । उन्होंने पूछा– "यह पूजा नित्य–पूजा की तरह होगी या कोई संकल्प लिया जायगा ?"

माँ ने कहा–"संकल्प के साथ हो ।"

यह सुनकर मुझे खटका लगा । नित्य–पूजा साधना का एक अंग विशेष है । माँ ने उस तरह पूजा करने को न कहकर नैमित्तिक–पूजा का आदेश क्यों दिया ? बहरहाल एक घण्टा तक बैठा पूजा देखता रहा । दिन भर व्यस्त रहने के कारण थक गया था । सती भी झूम रही थी । यह देखकर माँ ने हमें विदा दे दी । हम लोग प्रणाम करके चले आये ।

दूसरे दिन २८ आश्विन यानी १५ अक्टूबर, सन् १९३५ को सबेरे माँ के पास चला आया । आकर देखा–माँ को भोजन कराया जा रहा है । आजकल माँ एक दिन के बाद दूसरे दिन आहार करती हैं । कल उपवास का दिन था । आज आहार का दिन है । इसलिए आज सबेरे से लोग कुछ–न–कुछ लेकर आ रहे हैं । कोई अंगूर लेकर आ रहा है तो कोई सेव । कोई दूध–रोटी तो कोई मुखशुद्धि मसाला। सभी माँ को देकर प्रसाद बना ले रहे हैं । अन्य लोगों के साथ हम लोग प्रसाद प्राप्त कर रहे हैं ।

माँ हँसती हुई बोलीं–आज मेरा दफ्तर खुल गया है । मेरे लिए कुछ नाम रखे गये हैं जैसे 'कालीखो', 'अपीलेश्वरी', 'मानुषकाली' आदि । 'कालीखो' (काली खोह) नामक एक देवी मूर्ति विंध्याचल में है । उस मूर्ति का मुँह खुला हुआ है । जो लोग उक्त देवी मूर्ति का दर्शन करने जाते हैं, वे उस मुँह में कुछ–न–कुछ डाल देते हैं । भोजन के दिन जो लोग माँ का दर्शन करने आते हैं, वे भी माँ को बिना कुछ खिलाये जाते नहीं । इसी से माँ का नाम हुआ है–काली खोह ।

मैंने माँ से पूछा–"तुम्हारा नाम अपीलेश्वरी क्यों हुआ !"

माँ ने कहा–"यह नाम भोलानाथ ने रखा है ।" ढाका में किसी विषय पर आखिरी राय लेने के लिए लोग मेरे पास आया करते थे, इसीलिए भोलानाथ मुझे अपीलेश्वरी कहते हैं ।

जीव भविष्य नहीं जानना चाहता

आज भ्रमर की मांग में सिन्दूर देखा । जरा विस्मित हुआ । कारण भ्रमर को मैं कुमारी समझता रहा । बाद में सुना कि कल की पूजा के अवसर पर माँ ने शिव के साथ उसका विवाह कराया है।

मैं–'माँ, तुमने शिव के साथ भ्रमर का विवाह कराया है ?'

माँ–कहाँ से पता चला ?

मैं–यहीं सुना । कल जब तुमने संकल्प लेकर पूजा करने को कहा तभी मुझे खटका । आखिर माँ ने ऐसा क्यों कहा ?

माँ–उसका (भ्रमर का) उसी प्रकार का एक संस्कार था । जब वह पूजा करने बैठी तबतक वह यह नहीं जानती थी कि उसका ऐसा कोई संस्कार है, पर पूजा समाप्त होते ही उसमें वह भाव जाग उठा तब मैंने शिव के साथ उसका विवाह कराया । इसी प्रकार शारदा का विवाह नारायण से करा चुकी हूँ । उसकी कहानी तुमसे फिर कभी कहूँगी । विवाह के बाद भ्रमर से मैंने कहा–'अगर तुझमें विवाह के संस्कार होंगे तो आगे चलकर विवाह होगा ।' यह सुनकर भ्रमर ने कहा–'माँ, तुमने तो कहा था कि आगे कभी तुम मुझे विवाह करने के लिए नहीं कहोगी ।' मैंने कहा–'ठीक है ।' इसके बाद भ्रमर ने मुझे उसकी माँग भरने को कहा । उसने कहा–'मेरी माँग का सिन्दूर कभी साफ नहीं होगा । तुम क्यों नहीं मेरी माँग में सिन्दूर लगाती।' भ्रमर के इस अनुरोध का एक इतिहास है । यह शरीर जब बहू बनी थी, उन दिनों गृहस्थ बहुओं का सारा कर्त्तव्य पालन करता था । जब कोई महिला मुझसे मिलने आती तब उसे पान खिलाती, उसकी माँग में सिन्दूर पहनाती थी । गृहस्थी के मंगल के लिए वह सब करना पड़ता था । एक दिन श्यामला[1] मेरे यहाँ भेंट करने के लिए आयी। उसे पान देने के बाद जब सिन्दूर लगाने गयी तब वह बोली कि अगर

१. ढाका के प्रसिद्ध वकील श्रीयुक्त पण्डित दास महाशय की पत्नी ।

उसकी माँग का सिन्दूर अक्षय रहे अर्थात् सधवा रूप में मर सके तो उसे सिन्दूर लगाऊं, वर्ना कोई जरूरत नहीं । मैंने कहा–'ठीक वही होगा । लेकिन मुझसे जबरन इस शर्त पर सिन्दूर लगाओगी तो भविष्य में उन्हीं लोगों को मैं सिन्दूर लगाऊंगी जिनकी मृत्यु सधवा रूप में होगी। जो विधवा बन जायेंगी, उन्हें सिन्दूर नहीं लगाऊंगी । मुझसे कोई भी कार्य प्रारंभ करा लेने के बाद हजार रोओ–गाओ, फिर उसमें परिवर्तन नहीं होगा । इसके बाद कोई सधवा आयी और उसके अदृष्ट में विधवा होना है देखकर अगर उसे सिन्दूर न लगाया तो उसका प्राण हाहाकार कर उठेगा । उसका दर्द कौन ढोयेगा ? अगर उस दर्द का बोझ तुम ले सको तो मैं तुम्हारे कथनानुसार काम कर सकती हूँ ।' मेरी बातें सुनकर वह बोल उठी–'नहीं माँ, यह सब करने की जरूरत नहीं है। तुम जैसे सबको सिन्दूर लगाती हो, उसी प्रकार लगाती रहना ।' अब देखो, जीव अपना भविष्य नहीं जानना चाहता । भविष्य में क्या होगा, मैं यह तो बताने गयी थी । लेकिन तुम लोगों में इतना साहस कहाँ है ? सुअर जिस प्रकार विष्ठा खाता है, ठीक उसी प्रकार जीव भी अपनी अज्ञानता को प्यार करता है ।''

चरण स्पर्श करने का प्रणाम और दूर से प्रणाम करना

मैं–माँ, कुछ लोग तुम्हारा चरण–स्पर्श कर प्रणाम करते हैं और कुछ लोग दूर से प्रणाम करते हैं । इन दोनों प्रणामों में क्या भेद है ?

माँ ने शंकरानन्द स्वामी से कहा–''पिताजी, इन दोनों प्रणामों में क्या भेद है जरा बता दो ।''

शंकरानन्द ने कहा–चरण स्पर्श कर जिसे प्रणाम किया जाता है, उसकी क्षति होती है अर्थात् स्पर्श के कारण शक्ति क्षय होती है।

माँ ने संपूर्ण रूप से इस उत्तर का अनुमोदन नहीं किया । उन्होंने पूछा–''अच्छा पिताजी, अगर दाहिना हाथ बांये का स्पर्श करे तो क्या बांये हाथ की क्षति हो सकती है ?''

माँ की इस बात का गूढ़ रहस्य यह है कि जो लोग उन्हें प्रणाम करते हैं, ये उनसे अलग नहीं हैं । समस्त जीव–जगत् उनके विश्वरूप का अंश मात्र है । माँ ने इसके साथ ही यह भी स्वीकार किया कि जो लोग पगस्पर्श कर प्रणाम करते हैं, वे विशुद्ध वस्तु स्पर्शजनित कुछ सुफल प्राप्त करते हैं ।

मैं–तब तो तुम्हें स्पर्श करके प्रणाम करना उचित है, क्योंकि अन्य कोई फल मिले या न मिले, कम–से–कम तुम्हारा स्पर्शजनित पुण्य–लाभ होगा ।

माँ–कृपा–लाभ के लिए स्पर्श की आवश्यकता नहीं है । वह दूर से भी प्राप्त किया जा सकता है ।

इसी बात के उपलक्ष्य में माँ कहने लगीं–"किसी काम के करने या न करने के बारे में मेरी कोई इच्छा नहीं है, इसीलिए अक्सर ज्योतिष को कहती हूँ कि अगर मुझसे कुछ कराना है तो बीच–बीच में मुझे याद दिलाते रहना । मेरे निकट इच्छा प्रकाश करने पर उक्त इच्छा के अनुसार कार्य हो भी जा सकता है ।"

---

१. दिनेशचन्द्र राय । ढाका जिला के दाशरा ग्राम के निवासी । आप माँ के एक पुराने भक्त थे । जिन दिनों मैमनसिंह में सबजज थे, उन दिनों लकवा रोग हुआ था । फलतः उनका अर्द्धांग बेकार हो गया था । उन दिनों कुछ दिन के लिए अवकाश लेकर ढाका में आकर विश्राम कर रहे थे । एक दिन आश्रम में माँ से कह रहे थे–"एक दिन तुम्हें टांगाइल में कहा था कि मेरे सिर पर हाथ फेर दो । अगर उस समय तुम ऐसा करती तो आज मेरी यह हालत न होती । क्या मैं आशा करूं कि इस वक्त मेरे सिर हाथ फेर दोगी ?"

माँ यह सुनकर चुप रह गयीं । कुछ भी नहीं बोलीं । दिनेश बाबू ने पुनः कहा–"माँ, अगर तुम एक बार मेरे सिर पर हाथ फेरना पसन्द करो तो मैं तुम्हारे निकट आऊं ।"

इतना कहने के पश्चात् वे कुर्सी से उठ खड़े हुए । माँ ने कोमल और दृढ़ स्वर में कहा–"नहीं, मत आओ ।"
माँ में ऐसा दृढ़ भाव जीवन में कभी नहीं देखा था ।

मैं–सचमुच माँ ? अगर तुम्हारी इच्छा नहीं है तो क्या दूसरों की बात पर काम कर देती हो ? दूसरों की इच्छा जब तुम्हारी इच्छा से मिल जाती है तभी तुमसे कार्य की प्राप्ति होती है । तुम्हें शायद स्मरण हो कि रमना के आश्रम में स्वर्गीय दिनेश बाबू[१] ने तुमसे अपने मस्तक पर हाथ फेरने के लिए कहा, पर तुमने कहाँ स्पर्श किया ? शायद उसकी मृत्यु सन्निकट देखकर तुमने स्पर्श नहीं किया ।

माँ–"क्या मैं स्पर्श कर देती तो उसकी मौत ठहर जाती ? जो मरणोन्मुख रहा, उसे भी स्पर्श कर चुकी हूँ ।" इतना कहने के बाद माँ स्वर्गीय निर्मल बाबू (स्वामी अखण्डानन्द के दामाद) की मृत्यु का विवरण कहने लगीं ।

निर्मल बाबू की मृत्यु

माँ–जिन दिनों भोलानाथ उत्तरकाशी से मसूरी आये थे, उन्हीं दिनों निर्मल बाबू मेरे पास सपत्नीक आये थे । हम लोग जिस धर्मशाला में ठहरे हुए थे, वहाँ जगह न रहने के कारण वह पड़ोस के एक मकान में ठहर गया । मसूरी आते ही निर्मल बाबू बीमार पड़ गये। बीमार पड़ने के पहले ही मैंने कहा था कि इसका किसी अच्छे डाक्टर से इलाज कराओ । वह इसलिए कि बीमार आदमी जब मर जाता है तब लोग कहते हैं किसी अच्छे डाक्टर को अगर दिखाते तो शायद न मरते । ज्योतिष ने कहा–'आज ही तो बीमार पड़ा । एक होमियोपैथ डाक्टर देख रहा है । उसकी दवा का असर बगैर देखे दूसरे डाक्टर को कैसे बुलाया जाय ?' यह सुनकर मैं चुप रह गयी । निर्मल बाबू की हालत दिन–पर–दिन खराब होती गयी । खून सिर पर चढ़ गया था । सारा चेहरा रक्तवर्ण हो गया । उसने मुझे देखने की इच्छा प्रकट की । उसकी पत्नी बार–बार मुझे ले आने के लिए आदमी भेजने लगी, पर मुझे न जाने क्या हो गया कि मैं जा नहीं सकी । उधर जाने की मेरी इच्छा नहीं हो रही थी । ३–४ दिन बाद अचानक

तीसरे पहर मेरे मन में आया कि इस वक्त कोई मुझे निर्मल बाबू के पास चलने को कहे तो मैं चल सकती हूँ । ठीक इसी समय भोलानाथ आकर मुझे निर्मल बाबू के पास ले गये । इतने दिनों तक निर्मल बाबू विकार और बेहोशी की हालत में थे । मेरे जाने के कुछ पहले उन्हें होश आया था और कुछ बातें करते रहे । मैं कुछ देर वहाँ बैठी रही । बातें करती रही । बाद में जब चलने लगी तब मेरा हाथ अपने आप निर्मल बाबू के मस्तक पर चला गया । इस स्पर्श की ओर किसी का ध्यान नहीं गया । निर्मल बाबू की इच्छा नहीं थी कि उसे इंजेक्शन दिया जाय । लेकिन बीमारी की हालत देखकर उसे इंजेक्शन दिया गया और उसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी ।

सारी बातें सुनकर मैं सोचने लगा कि निर्मल बाबू बड़े भाग्यवान थे। मृत्यु के पूर्व माँ के मंगल कर का स्पर्श पा जन्म–मृत्यु के आवर्त से मुक्ति पा गये । प्रकट रूप में कहा–"माँ, निर्मल बाबू बड़े भाग्यवान थे ।"

माँ–हाँ, निर्मल बाबू की मृत्यु जिस कमरे में हुई थी, उसके ठीक ऊपरवाले कमरे में सिक्खों का ग्रन्थ साहब थे । एक प्रकार से ग्रन्थ साहब सिर पर रखे उनकी मृत्यु हुई ।

श्री श्री माँ और श्रीयुक्त राम ठाकुर

देहरादून आने के बाद से अक्सर माँ को 'नारायण–नारायण' कहते सुनकर मैंने कहा था–"माँ, ढाका में तुम्हें कभी 'नारायण–नारायण' कहते नहीं सुना । यहाँ आकर पहली बार सुन रहा हूँ ।"

माँ–यहाँ संन्यासियों को प्रणाम करने पर वे लोग 'नारायण–नारायण' उच्चारण करते हैं । यह देखकर नारायण कहना सीख गयी। मैं तो बच्ची हूँ जो सुनती हूँ उसी को सीख लेती हूँ । आगे देखकर नहीं सीखती थी । एक दिन राम ठाकुर ने आकर मुझे प्रणाम किया। यह जानते ही हो कि राम ठाकुर कितने वृद्ध हैं । वे एक साधक हैं । जब उन्होंने मुझे प्रणाम किया तो मैं काठ हो गयी । एक दिन

प्राण ठाकुर ने मुझसे पूछा–'माँ, राम ठाकुर ने तुम्हें प्रणाम किया, पर तुमने उन्हें प्रति नमस्कार नहीं किया ? पता नहीं, इसके कारण ठाकुर के शिष्य न जाने क्या सोचते होंगे ।' मैंने कहा–''तुम सभी से कह देना कि पिताजी (अर्थात् राम ठाकुर) का चरण हमेशा मेरे सिर पर है ।''

गुरु शिष्य सम्बन्ध

मैं–माँ, सुना है कि दीक्षादाता गुरु जब तक शिष्य की मुक्ति नहीं हो जाती तब तक मुक्त नहीं हो पाते । इस बारे में स्वर्गीय विजय कृष्ण गोस्वामी ने एक उदाहरण देते हुए कहा है–चरवाहा जैसे गायों को एक–एक कर नदी पार कराने के बाद अन्तिम गाय की डोर पकड़कर स्वयं पार होता है, इसी प्रकार गुरु भी एक–एक कर सभी शिष्यों को परित्राण कर अन्त में मुक्ति प्राप्त करते हैं ।

माँ–बात बिलकुल ठीक है । गुरु–शिष्य का सम्बन्ध भी एक बंधन है । गुरु शिष्य की मंगल कामना करते हुए इस बंधन को उत्पन्न करते हैं । इस बन्धन से उन्हें भी मुक्त होना पड़ता है । जब तक शिष्य मुक्त नहीं होता तब तक गुरु का बंधन मिटता नहीं । क्या तुमने पढ़ा नहीं है कि प्राचीन काल में लोग ब्रह्मविद्या प्राप्ति के लिए ऋषियों के पास जाया करते थे । ऋषिगण अधिकार भेद के अनुसार उपदेश देते थे । उपदेश देकर वे अपना कर्त्तव्य समाप्त कर देते थे। शिष्य के साथ आगे कोई संबंध नहीं रखते थे ।

मैं–क्या वे लोग शिष्यों में शक्ति का संचार नहीं करते थे ?

माँ–पहले ही कह चुकी कि अधिकार भेद के अनुसार उपदेश देते थे । वही उपदेश ही शक्ति संचार करता था ।

मैं–अगर कोई गुरु से मन्त्र प्राप्त कर जप–तपादि न करे तो क्या वह कभी मुक्त नहीं हो सकता ?

माँ–पुरुषाकार चाहिए । देखो, पत्थर में भी आग है, पर बिना घिसे दिखाई नहीं देती ।

मैं–दूसरी ओर देखिये, जिस प्रकार पत्थर में आग है, उसी प्रकार लकड़ी में भी आग है । दो लकड़ी रगड़ने पर आग दिखाई देती है। लेकिन एक लकड़ी जला देने पर फिर लकड़ी में लकड़ी रगड़ना नहीं पड़ता । उस समय जलती हुई लकड़ी अन्य लकड़ियों को जला देती है । उसी प्रकार गुरु अगर शिष्य में मन्त्र शक्ति संचार कर दें तो शिष्य को पुरुषाकार की क्या आवश्यकता है ? उसी शक्ति के जरिये वह मुक्त हो सकता है ।

माँ–कर्म के रहते गुरु–शक्ति समझ में नहीं आती, इसीलिए कर्म समाप्त करने के लिए पुरुषाकार की आवश्यकता है । कर्म करके कर्म समाप्त करना चाहिए ।

स्वर्गीय निरंजन बाबू[1] का क्या जन्म हुआ है ?

मैं–माँ तुमने शायद यह कहा है कि निरंजन बाबू ने श्रीयुक्त हरिराम जोशी के पुत्र के रूप में पुनः जन्म ग्रहण किया है ?

मां–मैंने नहीं कहा है, पर ज्योतिष एक दिन यहां बैठकर निरंजन बाबू के बारे में कहता रहा । उस समय हरिराम भी यहां था । ज्योतिष की बातें सुनने के बाद हरिराम ने हिसाब लगाकर बताया कि जिस समय निरंजन बाबू की मृत्यु हुई थी, ठीक उसी समय उसे एक लड़का पैदा हुआ था । यह लड़का शायद निरंजन बाबू हैं ।

---

१. स्वर्गीय निरंजन राय । आप इनकम टैक्स विभाग के कमिश्नर थे। स्व. निरंजन बाबू स्व. ज्योतिष बाबू के अन्तरंग मित्र तथा दोनों ही माँ के भक्त थे । रमना आश्रम बनाने का प्रयत्न सर्वप्रथम निरंजन बाबू ने किया था, किन्तु अकाल मृत्यु के कारण उसे असंपूर्ण रख गये । स्व. ज्योतिष बाबू ने अपनी 'मातृ दर्शन' नामक पुस्तक में श्री श्री माँ के परलोकवासी भक्तों में स्व. निरंजन बाबू का उल्लेख किया है ।

मैं–वास्तव में क्या यह लड़का निरंजन बाबू है ?

मां–इसी प्रकार की बातें हुई थी ।

मैं–तुम्हारा क्या ख्याल है ?

मां–(हँसकर) पिताजी सारी बातें पक्की कर लेना चाहते हैं ।

मां के श्रीमुख से बात निकाल नहीं सका, पर मुझे लगा कि इस बात में संभवतः सत्य है ।

गुरु पर निर्भर, शून्यवाद

मैं–मां, गुरु पर निर्भरता कैसे आती है ? निर्भरता आने पर संसार–यात्रा सुगम हो जाती है तब कोई डर नहीं रहता ।

मां–एक लक्ष्य रहने पर गुरु पर निर्भरता आ जाती है । सर्वदा उनकी बातों की चिन्ता करना, ध्यान, जप, नाम आदि को लेकर रहना, सर्वदा एक भाव में चिन्तन करने पर ही निर्भरता आ जाती है ।

मैं–चिन्तन के द्वारा जो निर्भरता आती है, मैं उसे नहीं चाहता। इस प्रकार की निर्भरता मन का विकार जैसा संदेह होता है । बिना किसी रूप की चिन्ता किये मैं निर्भरता चाहता हूँ। नाम की शक्ति के जरिये क्या निर्भरता नहीं आती ? अपने प्रयत्नों के द्वारा अर्थात् चिन्ता के माध्यम से कोई वस्तु प्राप्त करने पर वह विशुद्ध नहीं होती, उसका प्रमाण मेरा गुरु भाई है। उन्होंने ध्यान करते हुए सोचा कि उन्हें निर्विकल्प समाधि प्राप्त हुई है, पर वास्तव में उनको प्रकृत समाधि प्राप्त नहीं हुई । उन्होंने प्रकृत समाधि प्राप्त नहीं कर सके हैं, यह कहने पर उन्हें विश्वास नहीं होगा ।

माँ–देखो, एक लक्ष्य होकर रहना ही है मन का स्वाभाविक भाव । चंचलता और विक्षिप्तता मन की विकृत अवस्था है । इधर तुम अपने गुरु भाई को जितनी छोटी दृष्टि से देख रहे हो, वास्तव में वह उतना छोटा नहीं है । मनुष्य अनेक पुण्य प्राप्त कर इस अवस्था को प्राप्त करता है । यह अवस्था भी एक खूब ऊँची अवस्था है ।

मैं–इस प्रकार की अवस्था को मैं पसन्द नहीं करता । जो शास्त्र को झूठ समझता हो, गुरु को मूर्ख कहते हैं, सभी विषयों पर सामंजस्य रखते हुए बात नहीं कर पाते, ऐसे व्यक्ति को मैं महान् नहीं समझ सकता ।

माँ–सभी विषयों पर सामंजस्य रखते हुए बातें करना, दुर्लभ अवस्था होती है । अनेक पुण्यफल रहने पर मनुष्य को यह अवस्था आती है । इसके अलावा पिताजी ने जिस अवस्था को प्राप्त किया है, उसे भी लोग भाग्य के कारण प्राप्त कर पाते हैं । कल ही तुम्हें मैंने बताया कि पिताजी की इन दिनों खण्डन की अवस्था है । समस्त संस्कारों को खण्ड–खण्ड करते हुए एक लक्ष्य हो गया है । तुम यह देख रहे हो कि पिताजी गुरु से अश्रद्धा रखते हैं, पर मेरा कहना है कि वह क्रोध या अश्रद्धा नहीं है । वह तो भक्ति या अनुराग के लक्षण हैं। तत्व ही पिताजी के एकमात्र गुरु हैं । उस तत्व के प्रति अगर कोई अश्रद्धा प्रकट करता है तो पिताजी नाराज हो जाते हैं । जो लोग इस स्थिति तक नहीं पहुँचे हैं, वे इसे अच्छी तरह नहीं समझ सकेंगे।

मैं–वे तो शून्यवादी हैं । भगवान आदि को कुछ भी नहीं मानते ।

माँ–शून्यवाद के नाम पर एक वाद है । अनेक महापुरुष इसी मार्ग पर शान्ति प्राप्त करते हैं, इसलिए यह हेय कैसे हुआ ?

मैं–मैं ऐसी शून्यता नहीं चाहता ।

माँ–तुम क्या चाहते हो ?

अब मैं सोचने लगा कि मैं वास्तव में क्या चाहता हूँ । कुछ देर चुप रहने के बाद मैंने कहा–"मैं सृष्टिस्थिति के सभी रहस्यों को जानना चाहता हूँ ।"

माँ–जो अखण्ड शून्यता प्राप्त करता है, वही यह ज्ञान प्राप्त कर उसमें प्रवेश करता है। शून्यता खण्ड हो सकता और अखंड भी हो

सकता है । पिता जी (मेरे गुरु भाई) इन दिनों खंड शून्यता में हैं। जो अखंड शून्यता प्राप्त कर लेता है, उसके निकट विश्व का कोई रहस्य गुप्त नहीं रहता ।

योग विभूति, धर्म के साथ विभूति का सम्बन्ध

माँ–कल तुम्हें बता चुकी हूँ कि कुण्डलिनी–शक्ति जाग्रत होने के साथ ही सभी ग्रन्थियों में भेद होना प्रारम्भ हो जाता है । ग्रंथि भेद के साथ केवल नाना रूपों के दर्शन ही नहीं होते बल्कि अनेक अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति होती है । इन शक्तियों को काफी सावधानी से छिपाकर रखना पड़ता है। प्रकट करने पर धर्म पथ पर अग्रसर नहीं हुआ जा सकता और शक्ति भी लोप हो जाती है ।

मैं–क्या सभी समय ऐसा होता है ? काशी के विशुद्धानन्द परमहंसदेव जो पिछले तीस वर्ष से नाना प्रकार की योग विभूतियाँ दिखा रहे हैं, उनकी शक्ति क्षीण होने के लक्षण तो नहीं दिखाई दे रहे हैं ।

माँ–पिता जी की बात ही अलग है । उनकी विभूति भला क्षय होगी ?

मैंने बाबा विशुद्धानन्द के निकट जितने विभूतियों के खेल देखा था, उसमें से कुछ का वर्णन किया । उसे सुनकर माँ बोली –"इन विभूतियों को देखकर तुम्हें क्या लाभ हुआ ? पिताजी के निकट तुम इन विभूतियों को देखने की इच्छा प्रकट मत करना। हो सके तो कहना कि वे तुम्हें धर्म मार्ग में कुछ अग्रसर कर दें।

माँ–मैं बाबा के निकट ऐसा क्यों कहने जाऊँगा? तुम्हीं क्यों नहीं कर देती ? लड़कों का दुलारपन माँ के निकट अधिक होता है। मेरे लिए तुम क्या कर रही हो?

माँ–(हँसकर) यह सब करने की शक्ति मुझमें नहीं है। मेरे भीतर कोई संस्कार नहीं है। अगर संस्कार रहता तो मैं करती। लेकिन पिताजी के पास संस्कार है और बाबाजी में शक्ति भी है।

माँ की बातें सुनकर मैं चुप रह गया। इस तरह की बातें पहली बार नहीं सुन रहा हूँ। माँ बराबर कहा करती हैं कि उनकी कोई इच्छा अनिच्छा नहीं है। जो होना होता है, वह अपने आप उनके शरीर के भीतर हो जाता है। लोग इस भाव को समझ नहीं पाते। फलतः वे सोचते हैं कि माँ कुछ करेंगी नहीं, इसलिए ऐसा कहती हैं।

मैं–माँ, विभूति से धर्म का क्या सम्बन्ध है?

माँ–तुम लोग जागतिक ज्ञान के लिए पढ़ते–लिखते हो। शिक्षा प्राप्त करने पर तुम लोग कविता लिख सकते हो या भाषण दे लेते हो जबकि उक्त कविता या भाषण तुम लोगोंने किसी पोथी–पुस्तक में पढ़ा नहीं है। कविता लिखने और भाषण देने आदि में जिस प्रकार को विद्वत्ता का परिचय मिलता है, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान प्राप्त होने पर कुछ लक्षण प्रकट होते हैं। विभूतियाँ वही लक्षण हैं। इस ज्ञान को प्राप्त करने पर विभूतियाँ निश्चित आयेगी। विभूतियाँ तीन प्रकार की होती हैं – उत्तम, मध्यम, अधम। यदि विभूतियाँ स्वभाव में चली जाँय तो वही उसका उत्तम प्रकाश होता है। विभूति में स्थिति प्राप्त करना माध्यम प्रकाश होता है। इसके अलावा अन्य रूप प्रकाश अधम होता है।

आज आश्विन की २८वीं तारीख है। श्री श्री माँ के आहार का दिन । हम लोग प्रसाद प्राप्त करने के लिए निमंत्रित हुए। दोपहर को होटल में जाकर स्नानादि से निवृत्त होकर वापस आये। चिन्ताहरण बाबू[1] ने माँ को भोग दिया। जब हम लोग प्रसाद ग्रहण करने के लिए बैठे तब माँ एक आराम कुर्सी पर बैठी मुस्कराती हुई हम लोगों का

१. श्री चिन्ताहरण समाद्दार। बारिशाल जिला के निवासी। पुलिस विभाग में नौकरी करते हैं। छुट्टी लेकर मां के साथ घूमने आये है। माँके पुराने भक्त हैं ।

भोजन करना देखने लगीं। एक ओर माँ अनन्त स्नेहमयी और दूसरी ओर अनासक्ता ।

भोजन के बाद हम लोग माँ के पास जाकर बैठे। तरह–तरह की बातें होने लगीं। कुछ देर बाद कोई एक व्यक्ति आकर कहने लगा कि चिन्ताहरण बाबू की पत्नी रो रही हैं।

माँ ने पूछा – "क्यों रो रही है?"

शंकरानन्द स्वामी ने कहा – 'तुमने उसे कहा था कि वह कुछ काम काज नहीं करती। चिन्ताहरण बाबू नौकरी करते है और घर का कामकाज भी। यह कहकर ज्योतिष बाबू ने मजाक किया तो वे रो पड़ी।"

यह सुनकर माँ ने कहा – "यह ज्योतिष की कारस्तानी है। वह इसी प्रकार कोंचीकोंचा करता है।"

माँ की बातें सुनकर ज्योतिष बाबू के साथ हम लोग हँस पड़े। चिन्ताहरण बाबू ने भी साथ दिया। माँ ने कहा – "उसे (चिन्ताहरण बाबू की पत्नी) मेरे पास ले आओ।"

एक व्यक्ति चिन्ताहरण बाबू की पत्नी को पकड़ ले आया। माँ ने हँसते हुए पूछा – 'माँ, तुम क्यों रो रही हो ?'

माँ बार–बार यही प्रश्न पूछती रहीं और वह उत्तर देने के बजाय और तेज रोने लगी। परिस्थिति अनुकूल न देख माँ ने कहा – "इसे एक गिलास ठण्डा पानी पीने को दो। बेहोश हो सकती है"

जब तक पानी आये, उसके पूर्व ही वह बेहोश होकर माँ के सामने गिर पड़ी। माँ ने उसके सिर पर हाथ रखा। इतनी बड़ी घटना हो गयी, पर किसी के चेहरे पर परेशानी के सिकन नहीं आई। सभी यथास्थिति बैठे रहे। माँ के निकट आने पर लोगों में एक निश्चिन्त भावना रहती है।

माँ चिन्ताहरण बाबू की सरलता की प्रशंसा करने लगीं। चिन्ताहरण बाबू की पत्नी हमेशा बीमार रहती हैं। सांसारिक काम-काज नहीं कर पाती। दूसरी ओर चिन्ताहरण बाबू मुस्तैद आदमी हैं। वे सब कुछ चला लेते हैं। चिन्ताहरण बाबू की पत्नी को इस बात का दुःख बना रहता है कि वे अपने पति की सेवा ठीक से नहीं कर पातीं। उल्टे अस्वस्थता के कारण पति की सेवा ग्रहण करती हैं। इस तरह की बातें होती रहीं।

संस्कारोपयोगी शिक्षा की आवश्यकता

चिन्ताहरण बाबू की पत्नी को हिस्टीरिया की बीमारी के बारे में माँ कहने लगी - ''इसका संस्कार अच्छा था, पर स्वाभाविक भाव से विकास न हो पाने के कारण आज इस स्थिति में आ गयी है। बच्चों में भी धर्म-संस्कार रहते हैं, पर माता-पिता उसे समझ न पाकर उसे अन्य मार्ग पर ले जाने की कोशिश करते हैं जिसका परिणाम अच्छा नहीं होता। संभवतः ऐसे बच्चों को कठिन रोग हो जाता है। अक्सर उन्माद रोग हो जाता है। बच्चों को बचपन से ही धर्म-शिक्षा देनी चाहिए। तुम लोग बच्चों को बचपन से ही पढ़ने-लिखने के लिए कितना प्रयत्न करते हो, ताकि बड़ा होकर वह उपार्जनशील हो सके, लेकिन उन्हें धार्मिक-शिक्षा नहीं देते हो। अभी उस दिन एक प्रोफेसर साहब वर्तमान युग के अनाचार तथा उच्छृँखलता की चर्चा करते हुए अफसोस प्रकट कर रहे थे। मैंने उनसे कहा कि यह सब युग की हवा है। कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। प्राचीनकाल में हिन्दुओं के जीवन को चार आश्रमों में बाँटा गया था। आजकल वह सब नहीं है। सभी आश्रमों की जड़ ब्रह्मचर्य आश्रम है, इसका लोप हो गया है। इसके अभाव में शेष आश्रम भी गड़बड़ा गये हैं। माता-पिता का असंयम ही सन्तानों में प्रवेश कर गया है। ऐसी हालत में बच्चे असंयमी हैं, कहकर खेद प्रकट करने से क्या लाभ ? आवश्यकता है - धर्म शिक्षा की। अर्थ प्राप्ति के लिए शिक्षित बना रहे हो, उनके साथ ही धर्म शिक्षा की आवश्यकता है।

(चिन्ताहरण बाबू को लक्ष्य कर) तुममें एक गोपन भाव है। इस भाव को बचपन से ही अगर धर्म–मार्ग की ओर मोड़ दिया जाता तो धर्म के सम्बन्ध में तुम समझदार बन जाते, किन्तु उसे सांसारिक विषय की ओर मोड़ दिया गया, इसीलिए सांसारिक विषय में तुम कार्यपटु हो गये हो। (मुझे लक्ष्य कर) पिताजी में भी एक शान्त गंभीर भाव था। अगर इस भाव को बचपन से धर्म–पथ पर चलाया जाता तो इन्हें शान्ति प्राप्त होती। आजकल के माता–पिता धर्म के नाम से डरते हैं। वे यह सोचते हैं कि अगर इन्हें धार्मिक शिक्षा दी गयी तो ये घर से भाग जायेंगे। वे यह नहीं समझते कि कितने लोगों को संन्यास ग्रहण करने का अधिकार है और कितने लोग संन्यासी बनकर गृहत्याग कर रहे हैं, जिन लोगों में संन्यासी बनने के संस्कार हैं, हजार प्रयत्न करने पर भी उन्हें गृहस्थ नहीं बनाया जा सकता।''

लावण्य की बचपन की बातें – स्पर्श से शक्ति संचार

संस्कारोपयोगी शिक्षा की चर्चा करती हुई माँ ने बाबा भोलानाथ की भतीजी का उल्लेख किया। माँ ने कहा – ''भोलानाथ की एक भतीजी थी। उसका नाम लावण्य था। बचपन से ही वह मुझे बहुत मानती थी। अगर उसकी माँ कंघी–चोटो करती तो उसे पसन्द नहीं आती। अपनी चोटी खोलकर पुनः मेरे पास बनवाने आती। उसकी इच्छा रहती थी कि वह हमेशा मेरे पास रहे, पर उसकी माँ इतना मेलजोल पसन्द नहीं करती थी। लावण्य अक्सर मुझसे कहती– ''तुम्हें माँ कहने की मेरी इच्छा होती है।'' यह बात वह अपनी माँ से भी कहा करती थी। इस पर माँ उसे धमकाती – 'कहीं काकी को माँ कहा जाता है ?' बहरहाल उसका विवाह हो गया। विवाह के काफी दिनों बाद मेरी मुलाकात उससे हुई। उन दिनों मेरी एक अन्य अवस्था थी। कीर्तन सुनते ही यह शरीर न जाने कैसा हो जाता था। भाव में इधर–उधर झूमते हुए गिर जाने लगता। एक दिन सिद्धेश्वरी आश्रम

में कीर्तन हो रहा था। मैं भावावस्था में खड़ी होकर झूम रही थी, एक–दो बार गिरते–गिरते रह गयी। यह देखकर लावण्य ने सोचा कि मैं खड़ी–खड़ी गिर जाऊँगी। कहीं चोट न लग जाय, इसलिए वह मुझे पकड़ने गयी। लेकिन ज्योंही उसने मुझे स्पर्श किया त्योंही उसकी एक अद्‌भुत स्थिति हो गयी। मुँह से 'हरिबोल–हरिबोल' कहती हुई जमीन में लोटने लगी। इस दृश्य को देखने के लिये वहाँ कोई मौजूद नहीं था। सभी लोग मुझे लेकर परेशान थे। इधर मैं भावावेश में आश्रम से सिद्धेश्वरी चली आयी। सभी लोग मेरे साथ–साथ आये। उधर लावण्य अकेली फर्श पर लोटती हुई 'हरिबोल–हरिबोल' कहती रही। काफी देर तक जमीन में लोट–पोट करने के कारण गर्द–कीचड़ से सन गयी थी। सहसा उसे देखकर कोई पहचान नहीं सकता था। इसी बीच अखण्डानन्द जी (शशांक बाबू) न जाने किस कार्य से आश्रम में गये। आश्रम में उस वक्त एक भी आदमी नहीं था। अचानक उन्हें 'हरिबोल–हरिबोल' की आवाज सुनाई दी। वे चारों ओर देखने लगे। आवाज काफी धीमे स्वर से आ रही थी, इसलिए वे यह समझ नहीं पा रहे थे कि आवाज किधर से आ रही है। कुछ देर तक स्थिर होने के बाद उन्हें पता चला कि मिट्टी के ढूह के पास से यह आवाज आ रही है। जब वे मिट्टी के ढूह के पास पहुँचे तो देखा कि वह मिट्टी का ढूह नहीं, मिट्टी–कीचड़ से सरावोर कोई है। पानी से चेहरा साफ करने के बाद देखा गया कि वह तो हमारी लावण्य है। इधर तबतक मेरा भाव गायब हो गया था, पर लावण्य में था। वह केवल 'हरिबोल' कहती रही। उसमें यह भाव २–३ दिनों तक था। यह दृश्य देखकर लावण्य की माता चिंतित हो उठी और मुझसे नाराज हो गयी। उसने कहा 'इसीलिए मैं उसे तुम्हारे पास जाने नहीं देती थी। देखो, लड़की की क्या हालत हो गयी। अब मेरी लड़की को ठीक कर दो।' मैंने कहा–'खराबी क्या है ? लावण्य तो सिर्फ हरि का नाम ले रही है।' यह सुनकर वह और ''नाराज हो उठी। बोली –'यह सब मैं नहीं

समझती। उसकी अपनी गृहस्थी है। यह सब करने से उसका चलेगा कैसे ? उसे ठीक कर दो।''

इस कहानी को सुनकर मैंने कहा– ''माँ, चैतन्य महाप्रभु की जीवनी में पढ़ चुका हूँ कि महाप्रभु की भावावस्था में एक मछुए ने उन्हें स्पर्श किया और इसी प्रकार की स्थिति में हो गया था।''

माँ–सभी की यही स्थिति हो सकती है। इसमें ऊँच–नीच का सवाल नहीं है।

मैं–माँ, इसे शक्ति-संचार कहते हैं न ?

माँ ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।

शशांक बाबू का संन्यास–ग्रहण

तरह–तरह की बातों में शशांक बाबू के संन्यास–ग्रहण की चर्चा चल पड़ी। शशांक बाबू में संन्यास–ग्रहण करने का झुकाव था। इसके अलावा उनके संन्यास–ग्रहण के पूर्व माँ ने उन्हें संन्यासी के भेष में देखा था। शायद इसीलिए उन्हें विंध्याचल से हरिद्वार बुलवाकर थोड़े समय के भीतर संन्यास–ग्रहण करने का आदेश माँ ने दिया था। संन्यास–ग्रहण करने का न तो कोई आयोजन था और न यही निश्चित था कि किससे संन्यास–ग्रहण कराया जायगा। माँ ने सिर्फ इतना ही कहा – अगर अमुक दिन के भीतर तुम्हारा संन्यास हो गया तो ठीक, वर्ना फिर कभी नहीं हो सकेगा। अब तुम लोग इसके लिए प्रयत्न करो।''

कर्मवीर शंकरानन्दजी गुरु की तलाश में निकले। पहले एक व्यक्ति का चुनाव हुआ, पर उनकी उम्र कम होने की वजह से सुप्रसिद्ध मंगल गिरि महाराज को गुरु पद पर वरण किया गया। इनके निकट शशांक बाबू ने विधि पूर्वक संन्यास–ग्रहण किया। तभी से आपका नाम अखण्डानन्द गिरि हुआ।

माँ ने कहा– ''अच्छा ही हुआ। पिताजी गिरि संप्रदाय में भुक्त हुए। ढाका का आश्रम भी गिरि सम्प्रदायवालों का है।''

शुद्धभाव का प्रशस्त भोग

बातचीत के सिलसिले में माँ ने मेरी पत्नी से कहा–"माँ, तुम मेरे लिए क्या लायी हो ?"

अर्थात् कलकत्ता से माँ के भोग के लिए कुछ लायी हो या नहीं ? इस वक्त इसी विषय की चर्चा हो रही थी कि कौन क्या लाकर माँ को भोग देता है। मेरी पत्नी ने कहा – "माँ, मैं तो कुछ भी नहीं लायी हूँ।"

माँ ने कहा – "तुम लोग अपने साथ जो शुद्ध भाव ले आयी हो, उसी से मैं सन्तुष्ट हूँ। इसके अलावा मुझे जो कुछ खिलाया जायगा, वह तो बाहर हो जायगा। तुम लोगों में शुद्ध भाव और शुद्ध चिन्ता होने से ही मैं तुष्ट हो जाती हूँ।"

सती की शिवपूजा

१६ अक्टूबर, १९३५ ई०। आज मेरी कन्या सती शिव पूजा करेगी। भ्रमर को शिव–पूजा करते देख सती की भी शिवपूजा करने की इच्छा हुई जबकि इन दिनों उसकी उम्र आठ वर्ष है। श्री श्री माँ से कहने पर उन्होंने पूजा का सारा आयोजन करवा दिया। कल यह तय हुआ था कि स्वामी शंकरानन्द जी चिन्ता–हरण बाबू की लड़की के साथ सती को भी शिवपूजा की शिक्षा देंगे। फूल, विल्वपत्र आदि का प्रबन्ध वे यहाँ से कर देंगे। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं करना है। सवेरे होटल में गरम पानी से पत्नी और सती ने स्नान किया। यहाँ क्वार–कार्त्तिक के महीने में सवेरे के वक्त इतनी सर्दी पड़ती है कि ठंडे पानी से स्नान करना संभव नहीं है।

जब हम लोग पहुँचे, उसके कुछ देर बाद चिन्ताहरण बाबू की पत्नी अपनी पुत्री के साथ वहां आयीं। लड़कियाँ पूजा का प्रबन्ध करने के बाद माँ को बुलाने गयीं। भ्रमर जिस गुफा में शिव–पूजा करती रही, माँ के साथ हम लोग उस गुफा में गये। स्वामी शंकरानन्द जी इन लोगों

से पूजा करवाने का प्रबंध करने लगे। भ्रमर की पूजा वाले दिन माँ जहां बैठी थीं, आज भी वहीं बैठीं। उस दिन जिस प्रकार पूजा के बारे में निर्देश देती रही, आज उसी प्रकार उपदेश देने लगी। मैंने गौर किया कि वयोवृद्ध पके बालों–वाले स्वामीजी से भी कहीं अधिक इस दिशा में माँ की कितनी तीक्ष्ण दृष्टि है। सती फ्राक पहनकर बैठी थी।

माँ ने कहा–'कटे वस्त्र पहनकर पूजा में नहीं बैठना चाहिए।'

सती के लिए एक साड़ी देने को माँ ने भ्रमर को आदेश दिया। भ्रमर सती को साथ ले गई और थोड़ी देर बाद साड़ी पहनाकर वापस ले आई। ज्योंही स्वामीजी पूजा करने की तैयारी करने लगे, त्योंही माँ ने कहा–'एक वस्त्र में पूजा नहीं होती। सभी लोगों को एक–एक चादर दो।'

चादर कहाँ से लानी है, माँ ने यह भी बता दिया। यह सब देखकर मैंने सोचा कि जो पूर्ण हैं, वे सभी ओर से पूर्ण हैं। वैषयिक या आध्यात्मिक मामले में माँ की दृष्टि में सभी एक पर्याय–भुक्त हैं। इसीलिए विजय व्यास नामक एक भक्त को माँ ने कहा था–''तुम लोग जब जो कुछ करोगे, उसे शरीर–मन–प्राण देकर करोगे। बेगार या असावधानी से कोई कार्य नहीं करना चाहिए।''

क्षुद्र बृहत् के बारे में भेदाभेद में प्रयत्नों का तारतम्य माँ के अभिधान में नहीं है। अपने जीवन की नाना प्रकार की घटनाओं का उल्लेख करती हुई माँ यह सब बातें ढाका में बता चुकी हैं। उन उपदेशों को कैसे कार्यान्वित कर रही है, इस वक्त उन्हें देखकर जैसे वे सब जीवन्त हो उठे।

महिलाओं की पूजा क्रमशः चलती रही। हम लोग बैठे देखते रहे। दो–चार स्थानीय महिलाएँ माँ से मुलाकात करने आयीं। इनके अलावा कुछ पुरुष भी आये। इनमें जो वयोज्येष्ठ था, लक्ष्मीबाई आगे बढ़कर उनके कलेजे पर सिर रखकर खड़ी हो गयीं। मैंने सोचा कि

शायद उनके पति हैं। इस क्षेत्र की महिलाएँ शायद सभी के सामने पति को ग्रहण करने में संकोच नहीं करतीं। माँ मेरे मन के भाव को समझकर बोलीं–'लक्ष्मी का बड़ा भाई आया है।'

भाई–बहन के भीतर का भाव बड़ा मधुर लगा। ठीक इसी समय अनेक महिलाएँ आयीं। गुफा में स्थानाभाव हो जाने के कारण मैं बाहर चला आया। माँ ने यहीं भोजन बनाकर खाने का आदेश दिया, पर असुविधा देखकर मैं होटल में आ गया। भ्रमर कुमारी–पूजा करेगी जानकर सती को छोड़ आया।

सत्ययुग आ रहा है

होटल में स्नान–भोजन करने के बाद पुनः माँ के पास चला आया। यहां आकर सुना कि गुफा में जिस वक्त पूजा का कार्यक्रम हो रहा था, वहाँ एक महिला की गोद में एक शिशु को देखकर माँ ने उसका नाम बटुक भैरव रखा है।

यह सुनकर मैंने माँ से पूछा–'माँ, सुना है कि तुमने किसी बालक का नाम बटुक भैरव रखा है?'

माँ – (हँसकर) लड़कियां जब पूजा कर रही थीं तब मैंने गोद के बच्चे को देखकर कहा था कि कुमारियों का पूजा ग्रहण करने के लिए बटुक भैरव आये हैं।

मैं – तुम जो देव–देवियों का नाम इन बच्चों को दे रही हो, क्या इसका कारण यह है कि देवता ने पुनः जन्म ग्रहण करना प्रारम्भ किया है?

माँ – देवता तो हैं ही, वे पुनः जन्म ग्रहण क्या करेंगे?

मैं – सुना कि सत्य युग पुनः आ रहा है? अगर यह ठीक है तो देवतागण जन्म ग्रहण कर सकते हैं, इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

माँ – सत्ययुग अभी नहीं आया है, पर शीघ्र ही आ रहा है। वह हम लोगों के सामने है और उसकी आँच हम लोगों के शरीर में लग रही है।

मैं – उसकी आँच लग रही है, इसे हम कैसे समझ सकते हैं?

माँ – जब सर्वत्र यह देखोगे कि सत्य क्या है, इसे जानने की पिपासा जाग उठी है। धर्म के भीतर कुछ है या नहीं? यज्ञोपवीत ग्रहण करने की उपयोगिता है या नहीं? इस तरह के प्रश्न आजकल के लड़कों के मन में उत्पन्न हो रहे हैं। ये लक्षण अच्छे हैं।

माँ की बातें सुनकर मुझे श्री सी.एफ.एण्ड्रुज की बातें याद आ गयीं। उन्होंने अपनी What I Owe to Christ नामक पुस्तक में लिखा है कि उन्होंने विभिन्न स्थानों में भ्रमण करने के बाद देखा कि ईसाई–धर्म में किसी प्रकार का स्थायी सत्य है या नहीं, इसे जानने के लिए वर्तमान समय में सर्वत्र हर प्रकार के लोगों में उत्सुकता उत्पन्न हो गयी हैं।[1] अगर सत्ययुग आया तब संसार में सर्वत्र आयेगा। क्या यह सत्य है, यह जानने के लिए ही यह उत्सुकता है।

1. There are very many men and women in all countries, among the new generation, who are seeking to find a sure foundation for their christian faith amid conflicting currents of modern thought. They fully understand the impossibility of building up the future structure of society on a purely material basis, and they have a deep reverence for the great spiritual achievements of the past. But at the same time they are unable any longer to bow down to traditional authority either in practice or belief. Their own conscience commands them to prove all things and to hold fast that which is good. They feel the need, almost desparately at times, of a personal Guide to lead them on their ways, and they are ready to offer devoted allegiance to One who is truely their Lord and Master. Yet they hesitate in honest intellectual bewilderment to surrender their heart to Christ." - Andrews.